अध्याय - 3

"पं. नरेंद्र शर्मा के खंडकाव्य : वस्तुविन्यास"

अध्याय - 3

नरेंद्र शर्मा के खंडकाव्य: वस्तुविन्यास

प्रबंधकाव्य में मानव जीवन की घटित घटनाओं का वर्णन किया जाता हैं। ऐसी घटनाओं को परस्पर एक दूसरे से संबंध करके उसे एक सूत्र में बांध देना ही कथावस्तु का विन्यास कहलाता हैं। कथा के बिना चरित्रों का विकास संभव नहीं होता और पाठकोंकी उत्सुकता भी जागृत नहीं रह सकती। कथावस्तु का वस्तुविन्यास या संगठन करनेके लिए कौशल की आवश्यकता हैं। कथावस्तु को सुसंगठित बनाने के लिए कवि अपने काव्य में आए छोटे- छोटे कथानकों का विकास इस ढंग से करता हैं जिससे वे एक दूसरे से अलग प्रतीत न हों तथा सभी घटनाओं का केंद्रबिंदु एक हो।

प. नरेंद्र शर्मा लिखित 'द्रौपदी' तथा 'उत्तरजय' काव्य की कथावस्तु का विन्यास ऐसा ही है। उसमें क्रम और संगति का निर्वाह पूर्ण रुपसे हुआ हैं। इन दोनों काव्य की कथावस्तु में कोई आवश्यक बात नही आयी हैं और कोई आवश्यक बात छूट गई हैं। द्रौपदी और युधिष्ठिर के चरित्र से संबधित बहुतही महत्वपूर्ण घटनाओ तथा प्रसंगों को अपने काव्य में स्थान दिया हैं। उन्होंने कई महत्वपूर्ण घटनाओंका वर्णन न करके उनका सिर्फ उल्लेख किया हैं। कविने ऐसी महत्वपूर्ण घटनाओं को कार्यकारण श्रृंखला में बांधकर क्रमागत रुप में रखी है। 'द्रौपदी' तथा 'उत्तरजय' दोनों प्रबंधकाव्य की कथावस्तु प्रधान पात्र के जीवन की गतिविधियों के साथ-साथ ही विकसित हुई है।

द्रौपदी तथा उत्तरजय दोनो काव्योंकी कथावस्तु का रुप बहुत छोटा हैं। इसमें ली गयी। घटनाएँ नाममात्र हैं। ये घटनाएँ एकदूसरे से जुडी हुयी हैं। इन दोनों काव्य कृति के लिए चुनी गयी कथावस्तु बडी रोचक सरस और आकर्षक हैं, इसमें महाभारत का चिरपरिचित आख्यान हैं विषय की दृष्टिसे यह आख्यान पुराण प्रसिध्द हैं लेकिन कवि ने अपनी मौलिक उद्‌भावनाओं से इसे नवीन रुप देकर कथावस्तु को मर्मस्पर्शी और हृदयग्राही बना दिया हैं।

पहले अध्याय में चर्चित खंडकाव्य के तत्वों के अनुसार खंडकाव्य में कथावस्तु महत्वपूर्ण तत्व हैं। प्रस्तुत अध्याय में हम श्री नरेंद्र शर्मा के द्रौपदी और उत्तरजय इन

कृतियों के वस्तुविधान की खंडकाव्य के तत्वानुसार चर्चा करेंगे। खंडकाव्यों की कथावस्तु क्रमागत रुप से इस प्रकार हैं।

द्रौपदी

पं. नरेंद्र शर्मा ने 'द्रौपदी'खंडकाव्य में महाभारत की कथा का आधार लिया हैं। महाकवि व्यास रचित महाभारत के उद्योगपर्व के दोनों अध्यायों की कथा को लेकर द्रौपदी की कथा को उभारा हैं। महाभारत की कुछ प्रमुख घटनाओं एवं पात्रो की प्रतीकात्मक व्याख्या प्रस्तुत करते हुए मानव जीवन से संबंधित कतिपय शाश्वत मूल्योंको उठाया हैं। द्रौपदी में कवि का उद्देश्य महाभारत की कथा को दुहराना मात्र नहीं हैं। कविका स्पष्ट कथन हैं कि"द्रौपदी में मेरा उद्देश्य पुरानी कहानी को मात्र दुहराना नहीं हैं। मैं यह मानकर चला हूँ कि सहृदय पाठक महाभारत की कथा से भलिभाँति परिचित हैं इसलिए मैने संकेतो और सस्पर्शो को ही अलम् समझा हैं। जिस कथा को हम बाल्यकाल से ही सुनते आए हैं, उसे ज्यों कि त्यों पद्यबध्द करना मै उचित नही समझता , मेरा उद्देश्य कथा के संबंध में अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करना हैं इस उद्देश्य के अनुरुप मैने लोकप्रसिध्द कथा के प्रति बीज दृष्टि और लघिमा शैली को अपनाया हैं।"। कवि की दृष्टिसे महाभारत का आख्यान महासमुद्र के समान है इसलिए कविने उनमेसे अंजली भर जल लेकर द्रौपदी की रचना की हैं।

कविने इस कृति की कथावस्तु पाँच सर्गो में विभाजित की हैं। पहले सर्ग में कथावस्तु का प्रारंभ द्रौपदी स्वयंवर के बाद की घटना से होता हैं। कवि ने प्रारंभ में ही द्रौपदी को महातत्वो को संश्लिष्ट एव तेजोमय कर देनेवाली शक्ति के रुप मे देखा है। जैसे--

"द्रौपदी जीवनीशक्ति
सौप दी गई पाँच तत्वों को।
या कहा नियति ने, "पार्थ।
करो अब प्राप्त लुप्त सत्वों को।"2

कवि का विचार है कि पाँचो पांडव युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, एवं सहदेव क्रमश: आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं धरती नामक तत्व के प्रतीक है। द्रौपदी स्वयवर के पूर्व वे शक्तिहीन बने हुए ब्राम्हण वेश में भिक्षाटन करते फिरते थे। द्रौपदी स्वयवर के फलस्वरुप जीवनीशक्ति द्रौपदी की प्राप्ति से पाँचों पाडवो के रुप में महातत्व अपना संश्लिष्ट रुप

प्राप्त करते हैं और अपने कर्तव्य एवं अधिकार दायित्व के प्रति सजग होते हैं। मन से उदार तथा महारथी किंतु अवैध होने कारण कुती माता द्वारा त्याज्य रविसुत कर्ण अपने तप और साधना के कारण दिव्यास्त्र प्राप्त होते हुए भी दुर्योधन जैसे पापचारियों के संग रहनेके कारण स्वयवर में द्रौपदी को प्राप्त नहीं कर सकता है, कवि का कथन हैं--

"जीवनीशक्ति का हरण
पूर्ण होगी यह इच्छा क्योंकर ?
निश्चय हारेगा कर्ण
धर्म के पथ से विचलित होकर
दिव्यास्त्रों का अभिमान
शस्त्र
व्यर्थ रविसुत का शस्त्र प्रदर्शन
प्राप्त हैं उसें न दिव्य समर्थन।"3

इस प्रकार पहले सर्ग में कवि ने पाँच पाडवों का पंचतत्व में परिचय बडे ही सुझबुझ के साथ दिया हैं। साथ ही उन्होनें प्रतीकात्मक शैली में द्रौपदी संयोग से पांडवों के प्राणवान होने का चित्रण किया हैं तथा सर्ग के अंतमें यह भी स्पष्ट किया हैं कि मनुष्य कितना भी महान, शूरवीर हो बुरी संगत में रहकर हार ही जाता हैं।

दूसरे सर्ग में पुन: द्रौपदी की विशेषताओं का वर्णन करते हुए कविने स्पष्ट किया है कि द्रौपदी के संसर्ग से पांडवों में तो शक्ति आयी उससे कौरवो की दानवी शक्तियाँ परास्त होने लगी। कौरवोंके सहायक कर्ण को अर्जुन से पराजित होना पडा। इसके बाद जीवनीशक्ति द्रौपदी अपने पाँचो पतियों के साथ जब हस्तिनापूर के हस्तिद्वार पार कर राजमहल मे प्रवेश करती है, सभी ओर द्रौपदी की जयजयकार का गर्जन सुनाई देता हैं। नियति ने हुंकार कर धृतराष्ट्र का राज्यशासन हिलाया।4 उन्हें अपने शत पुत्रोंका भविष्य अंधकारमय नजर आने लगा इसलिए वह अपने पुत्र दुर्योधन को समझाते हैं कि उनका अधिकार उन्हें दे दिया जाए पर उसका कुछ भी परिणाम उसपर नहीं हुआ।" सुयोधन पुत्र उनका ही अंश था इसलिए उसने झगडा करना नहीं छोडा। नियति के आगे शीश झुकाना उदंड दुर्योधन ने नहीं स्वीकारा।" 5 सत्याग्रही पांडव और दुराग्रही कौरव इस संघर्ष की वासुकी डोर के केंद्र भीष्म पितामह इसके दों

छोरों को मिलाना चाहते हैं, भीष्म पितामह ने विदुर से कहा कि अप्राप्य इच्छित को प्राप्त करने के लिए याज्ञसेनी अर्थात द्रौपदी को प्रसन्न करना होगा। कौरव पांडवों के बीच स्नेह का सेतु बाँधना ही होगा।"6 पर शकुनि दोनो का मिलन कभी नहीं देख सकता था। पातिव्रत धर्म की साक्षात् प्रतिमा गांधारी की भी इच्छा थी कि कौरवों और पांडवों का भविष्य मंगलमय बनें। द्रौपदी जब हस्तिनापूर पहुँचती हैं। तो स्वभावानुसार धृतराष्ट्र कृत्रिम भाव प्रदर्शित करते हैं। तथा गांधारी द्रौपदी को अपना स्नेहालिंगन देती हैं। दुर्योधन विद्वेष करते हैं। पितामह भीष्म तथा विदुर को हर्ष होता हैं। धृतराष्ट्र के चरणों के पास द्रौपदी जब आशिश देने पहुँचती हैं तब दुर्योधन उसके रुपसौंदर्य के तेज में वज्राहत होता हैं तथा पांडवों को पराजित करने की तरकीब सोचने लगता हैं। पांडवों और द्रौपदी के प्रति दुर्योधन के मनके इसी द्वेषभावको शकुनि ने एक अच्छा शकुन माना और वह योग्य अवसर की प्रतिक्षा करने लगा।

तीसरे सर्ग में कविने द्रौपदी को प्राप्त करनेके लिए शकुनि के मनोभावों के चित्रण से कथा का आरंभ किया हैं। द्रौपदी एव गांधारी के प्रेममिलन से शकुनि चिंतित हो जाता है और द्युत के सहारे पांडवों को पददलित करने का निश्चय करता है। न्यायी विदुर से पांडवों के हस्तिनापूर पर अधिकार की बात सुनकर भी दुराग्रही दुर्योधन उसे अस्वीकार कर लेता हैं, अपने पुत्र के ममत्व में अंधे धृतराष्ट्र भी निर्णय देते हैं कि " कौरव -पांडवों के हित के लिए युधिष्ठिर को पुरातन भूमि खांडवप्रस्थ दे दी जाय आज वह उपेक्षित ऊसर भूमि के रुप में पडी हैं, फिर भी उसपर कुरुराज राज करने रहें हैं, वही पर पूजनीय ययाति नामक राजा को पाकर प्रजा अपने को धन्य मानती थी आज वह उजड गयी हैं तो क्या हुआ? युधिष्ठिर अपने बाहुबल से राजा बनेंगे।"7 फलस्वरुप पांडव अपनी धर्मपरायणा वृत्ति और परिश्रम के आधारपर सूनी पडी ययाति की भूमि को बसाने चल पडे। उनके सहायक कृष्ण उनके साथ थे तथा अग्नि एवं इंद्र के वरदान से खांडवप्रस्थ की उसर भूमि में शीघ्र ही एक सुदर नगर निर्मित हुआ वह नगरी अपनी शोभा और समृध्दि में इंद्रपुरी की समता करने लगी। युधिष्ठिर सम्राट बने उन्होने राजसूय यज्ञ किया, जिसमें सभी देशोंके राजा महाराजा आयें।

पांडवों की श्रीवृध्दि से जलनेवाला दुर्योधन अपने मामा शकुनि से कहने लगा--"मै क्या करूँ, असहाय हूँ। अपने स्वजनों के सुखों को निरुपाय होकर बस देखता हूँ , यह दूर्योधन के लिए लाक्षागृह बन गया हैं। पांडवो के लिए कृष्ण हैं तो मेरे लिए पुत्र घनश्याम हो। हे बुध्दिघन अर्थात शकुनि मामा दुर्योधन के प्राण बचाओ। कुछ ऐसी युक्ति करो जिससे मेरे दुःख

SHIVAJI UNIVERSITY LIBRARY KOLHAPUR

मुक्ति मिले और उन्हे विष बाण लगे। दुर्योधन के मुख से स्वजन सुख से दु:खी मनकी सुहानी बात सुनकर शकुनि ने उभय कुल के नाश के लिए योजना सोची।"8 दुर्योधन की बातें सुनकर शकुनि ने सोचा कि पाडवो का पतन एक ही प्रकार से हो सकता हैं और वह द्युत से ही संभव है। युधिष्ठिर को द्यूत का व्यसन हैं, पर उसका पर्याप्त ज्ञान नहीं। युधिष्ठिर निश्चय ही उसमें हारेगा, मैं अपनी सारी कलासाधना दॉवपर लगाकर उन्हें विजय निश्यय ही दूँगा। द्यूत की छलपूर्ण कला के द्वारा पांडवोपर विजय निश्चित है। इसी चतुरता से सौभाग्य लक्ष्मी द्रौपदी को भी हम निश्चय ही वश में कर सकेंगे।9

चतुर्थ सर्ग में युधिष्ठिर और शकुनि के जुआ खेलने का वर्णन है। इस जुए में युधिष्ठिर शकुनि से हार ही गये पर अग्नि कन्या सति द्रौपदी को भी एक सामान्य पार्थिव वस्तु समझकर दॉवपर लगा दिया, और जीवन का चरम सत्य ही खो बैठे। उनके जीवनाकाश का प्रकाश और सुख तो लुप्त हो गया तथा अंधकार और निराशा के बादल उमडने लगें।"।10 कौरवो की भरी सभा में दु:शासन ने उस अयोनिजा को निर्वसन करनेका निर्लज्ज प्रयास किया। द्रौपदी का यह अपमान भीष्म, द्रोण, और कृपाचार्य जैसे महाबली और नीतिज्ञ अपनी आंखों से देख रहे हैं पर प्रतिकार न कर सकें।"।। परंतु भगवान श्रीकृष्ण ने द्रौपदी का चीर बढाकर उसकी लाज बचायी, कौरवोंद्वारा नारी का यह अपमान उनके विनाश का कारण बनता हैं।

इसके बाद पांडव द्रौपदीसह वनगमन करते हैं अपने भाइयों और द्रौपदीसहित युधिष्ठिर वन मे मारे- मारे फिरकर अज्ञातवास की अवधि व्यतीत करते है, इस अवधि में उनकी वीरता और यश का प्रसार होता हैं तथा अनेक राजा उनके मित्र बन जाते है"निर्वासित हुए बिना कौन आत्मपरिचायक बना हैं? देश की आत्मा निवास शांत, पवित्र तपोवन में ही हमेशा प्रतिष्ठित हुई हैं अत: युधिष्ठिर के लिए यह वनवास फलदायक ही सिध्द हुआ।"।2 द्रौपदी भी राज्यवंचिता हुयी पर वह अपराजिता थी जीवनीशक्ति द्रौपदी की अवहेलना कौरवो को आत्मनाश की ओर ढकेलती है। उसकी खुली हुई वैतरणी के समान और काले केश धरती को छू रहे थे जैसे भविष्य में धराधायी होनेवाले शत्रुओं की मरणवेला का संकेत कर रहें थे।

"नदी वैतरिणी यथा वेणी खुली लहरा रही।
धार्तराष्ट्रों को डुबाने हर भॅवर गहरा रही।
द्रौपदी के केश काले, धरा को छूने चले
शत्रु होगें धराधायी, मरण वेला आ रही।"।3

12294
A

दुर्योधन ने कृष्णके संधि प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। पांडवों को सुई की नोंक के बराबर भी भूमि देने की बात नहीं मानी फलस्वरुप महाभारत का युध्द अटल हो गया। इस युध्द का भयंकर परिणाम सृष्टि में पहले ही दिखाई देने लगा। सारी सृष्टि की चाल ही जैसे अपनी धुरी पर से अलग हो चुकी थी, धर्म और अधर्म दोनों एक जैसे दिखने में सत्य असत्य की पहचान कठिन थी देव और दानव भीषण रुप से मोहग्रस्त थे।

महाभारत का प्रचंड युध्द आरंभ हुआ जो अठारह दिनोंतक चलता रहा इस युध्द में विजय पाने के लिए सभी ने अपना बाहुबल, शस्त्रास्त्र, तन और युध्द के तीव्रोन्माद से प्रेरित अपना मन भी सौंप दिया। "वह तो ऐसी साधना थी, जो युध्द की ज्वाला से ही संपन्न हो सकी। द्रौपदी ने 'स्वत्व' की रक्षा के लिए प्रतिशोध की ज्वाला प्रज्वलित की उसमें दोनों पक्षोंके न जाने कितने योध्दाओं की आहुति देनी। पांडवों के पाँचो पुत्रों की बलि भी उसमें देनी पडी। स्वत्व की प्रतिष्ठा और पंचतत्वों की रक्षा के लिए तो बडे से बडा बलिदान भी तुच्छ ही हैं।"।4 महाभारत का यह संग्राम बहुत ही कठिन था अठारह दिवसीय नरसंहारक युध्द के बाद पांडवों की जीत और कौरवों की हार होती हैं। कविने अंत में स्पष्ट किया हैं कि दिव्य यज्ञाग्नि से द्रौपदी की अवहेलना कठिन थी, इससे खेलकर सभी क्षत्रिय वीर मर मिटे हैं। अतः भूलकर भी अग्नि से खेल खेलना अपने आपको धोखे में डालना हैं।

द्रौपदी खंडकाव्य के पाँचवे सर्ग में कथा का उपसंहार हैं। महाभारत के नरसंहारी युध्द के अठारह दिन बीते। शापित, कौरव रण में हार गये और पांडव युध्द में विजयी हुए। इस भीषण संग्राम के बाद युध्दक्षेत्र में शांति छा गई। चारों ओर स्मशान की गहरी शांति, करुण शून्यता एवं निर्मम निस्तब्धता दिखाई पड रही थी वीरों के भरे पूरे घर सूने पडे थे। यमुना के किनारे स्थान- स्थान पर चिताओं का धुआँ उठ रहा था--

"युध्द -क्षेत्र पर शांति छा गई,
अष्टादश दिन बीतें।
शापित कौरव हारे रण में,
वहिसुता- वर जीते।
कुररी-सी रोतीं कौरवियाँ
रुदन न हृदय समाना,
वीर पडे सो रहे विजन में,
भरे पुरे घर रीते।"।5

विनाश की इस बेला में भी पांडवो के स्वागतार्थ हस्तिनापूर सजाया गया था। "रण की अंतिम कालरात्रि में अश्वत्थामा ने द्रौपदी के पाँचो पुत्रों को तथा भाई धृष्टद्युम्न का वध कर दिया। द्रौपदी भी गांधारी के ही समान पुत्र और भ्रातृहिना हुई लेकिन द्रौपदी सबकुछ गँवांकर भी विजयिनी थी, मगर गांधारी सब तरह से पराजित थी। अंधे पति का साथ देने के लिए पतिपरायणा गांधारी ने ऑखोंपर पट्टी बांधी थी अतः उसने आजीवन अपने पुत्रों को नही देखा था, लेकिन नियति की यह क्रूर विडंबना थी कि उनके शवदर्शन के लिए ही सति गांधारी ने अपनी ऑखों की पट्टी खोली।"।6 युध्द के बाद जब युधिष्ठिर अपने मृत संबंधियों की आत्मा की शांति के लिए तर्पण कर रहें थे तब कुंती ने उससे कहा कि वे अपने बडे भाई कर्ण की आत्मा की शांति के लिए भी जल अर्पित करें। यह सुनकर धर्मपुत्र का हृदय उन्हें धिक्कारने लगा उनकी ऑखों में ऑसु आ गए। वे स्वयं को दोषी समझने लगें।उन्हें शरशायी भीष्म पितामह की स्मृति आई, जिन्होंने स्वयं ही अपने मरण का भेद बताया। गुरु द्रोणाचार्य की मरण बेला में युधिष्ठिर के द्वारा किया गया अभिनय भी उनकी आत्मा को कचोटने लगा। उन्होंने विचार किया कि उनके लिए मरनेवाले उनसे बडे थें। इसी बीच अग्नि देवता प्रकट होकर कौरवों द्वारा किया गया अन्याय, अन्न वस्त्र की भिक्षा, अभिमन्यु की अमानुष हत्या और जीवनीशक्ति द्रौपदी की अवहेलना आदि घटनाओं की याद दिलाई। अग्नि ने समझा दिया कि कौरवों को क्षमा करना ठिक नही हैं-- हे सत्यनिष्ठ। तुम अब भी सत्यनिष्ठ रहो। आत्मयज्ञ में देवेच्छा के वशीभूत होकर मानव को प्रथम आहुति अपनी ही इच्छाओं की देनी पडती हैं।

अग्नि के समझाने से युधिष्ठिर को आत्मज्ञज्ञन हुआ और वे समझ गये कि नर की विजय का मूल्य नारी अपनी दहन और सहनशक्ति से चुकाती हैं। युधिष्ठिर को उस पृथा माता की सुधी आई जिसने अपने वैध पुत्र के लिए अवैध पुत्र की बलि दी। उसीतरह गांधारी ने अपने मदोन्मत्त सौ अत्याचारी पुत्रों को विजय का आर्शीवाद नहीं दिया। द्रौपदी ने अपने पांच पुत्रों की तथा सुभद्रा ने अभिमन्यु की बलि चढाई। इसप्रकार कृष्ण की बहन सुभद्रा, द्रौपदी, कुती, गांधारी के महान आत्म बलिदान से ही पांडव युध्द में विजयी कहलाये गयें।'।7 इतनाही नही कुरुवंश की प्रत्येक नारी ने अपने जीवन के अमूल्य पुष्पों की बलि चढाई और उन्हीं के त्याग एवं बलिदान से सत्य की जय और असत्य की पराजय हुई।

नारी की सहनशक्ति में विजयश्री वास करती हैं। द्रौपदी के कारण कुरुक्षेत्र ठह गया, अंबाहरण के कारण भीष्म शरशयाशायी हुए और गांधारी के शाप के कारण देवकीपुत्र शापित हुए। नारी की मर्यादा की नर द्वारा जब-जब अवहेलना हुई हैं तब-तब नर का संहार हुआ हैं। नारी ही कृत्या, मृत्यु, उर्वशी, जननी माया, जाया, तारिणी और कल्याण कारिणी हैं। उसी

में ब्रम्हांड समाया हैं और वही अपने पुपयोंसे नर को शक्ति और प्रेरणा प्रदान करती हैं। युधिष्ठिरने अश्वमेध यज्ञ किया जिसके रक्षक अर्जुन बनें और विजय श्री. ले आए।"।8 इसतरह पांडवों के सभी दु:ख दूर हो गए युधिष्ठिर के राज्यमें सुख-समृध्दि का प्रसार हुआ। यह सब सुख सौभाग्य द्रौपदी की तपस्या और अखंड पुष्प का ही फल था। इसप्रकार नारी महत्ता से कथा का समापन होता हैं।

उपर्युक्त कथावस्तु के आधारपर कहा जा सकता हैं कि द्रौपदी में कविने महाभारत की विशाल कथा का एक अंश को लेकर प्रतीकात्मक और भावात्मक व्याख्या के द्वारा अपने आध्यात्मिक दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया हैं। द्रौपदी में मानव जीवनीशक्ति की सहायता से अपने लुप्त सत्वों की प्राप्ति करता हैं। जीवनीशक्ति द्वारा पाँच तत्वों को दिव्य कलेवर में संश्लिष्ट करने के पश्चात अपने अधिक अधिकारों की प्राप्ति के द्वारा उसे वहाँ महत् रुप दिया गया है। कविने इस काव्य में नारी की दहनशक्ति-सहनशक्ति और दहन-सहन शक्ति की ओर संकेत किया हैं।

प्रस्तुत कथावस्तु का वस्तु संगठन अर्थात आरंभ-मध्य अंत अत्यंत स्पष्ट हैं। द्रौपदी स्वयंवर से उसका प्रारंभ होता हैं। कौरवों-पांडवों के बीच टकराव-खांडवप्रस्थ में राजसूय यज्ञ कथा का मध्यभाग हैं। दुर्योधन की द्वेषाग्नि शकुनि की कुटिलता- युधिष्ठिर का द्युत में हारना- द्रौपदी की अवहेलना कथा के संघर्ष की चरमसीमा हैं। अंत में अठारह दिन का नरसंहारी युध्द होकर पांडवों की विजय तथा सुख से जीवन-यापन करना फल प्राप्ति तथा कार्यसिध्दि है। इसमें कविने अवांतर कथाओं और घटनाओं को केवल स्पर्श करके उसे गतिशील बनाने में सहायक-रोचक बनाया हैं। कवि ने कथा में एकान्विति और प्रभावान्विति की ओर विशेष ध्यान दिया है। संक्षेप में उद्देश्य की व्यापकता, महानता, प्रतीकात्मकता, कथावस्तु के संगठन तथा लघु आकार में व्यापक जीवन की अभिव्यक्ति करने में तथा कथा के पूर्वापार संबध में उत्तरोत्तर सरसता के विकास की दृष्टिसे द्रौपदी एक सफल खंडकाव्य हैं।

'उत्तरजय' में श्री. नरेद्र शर्मा ने द्रौपदी खंडकाव्य की कथासे आगे का वर्णन किया है। इस कृति का कथानक बारह भागों में विभाजित है ।) प्रवेशसूत्र 2) प्रत्यावर्तन 3) नियतिचक्र 4) अमर्ष-विषाद 5) प्रतिशोध 6) परिणति 7) स्वीकृति 8) साधन 9) साध्य ।0) समुदय ।।) सिध्दि ।2) प्रसिध्दि। इस काव्य को स्वयं लेखकने गाथा काव्य कहा है और उसे आधुनिक खंडकाव्य की नविन विधा बतलाया हैं। इस काव्यका प्रारंभ प्रवेशसूत्र से होता है। जिस तरह

प्राचीन संस्कृत नाटकों में नाटक का प्रारंभ सुत्रधार से किया जाता था। सूत्रधार रंगमंचपर आकर नाटक का उद्देश्य आदिका उल्लेखा करता था सुत्रधार की पत्नी इसमें उसका सहयोग देती थी, इसी पध्दति को 'उत्तरजय' के प्रवेशसूत्र में अपनायी गयी हैं और गाथा एवं गति छंदों में इस काव्यकृति का परिचय दिया हैं।

जीवनीशक्ति द्रौपदी ने कौरवो से अपने अपमान का प्रतिशोध ले लिया पर उस प्रतिशोध के पूर्ण होनेपर युधिष्ठिर चिंतातुर हो उठे। उन्होंने देखा की आहत दुर्योधन युध्दक्षेत्र में शरीर त्यागकर सुरपति के लोग जा रहा हैं।'।9 दुर्योधन में तो दस हजार हाथियों का बल था उनका समस्त शरीर वज्र के समान शक्तिशाली बना हुआ था। शरीर के सारे अंग माता गांधारी की मंगल दृष्टि लिए हुए थे, इतना होते हुए थे इतना होते हुए भी दुर्योधन आहत हुआ क्योंकि वह बहुत अभिमानी था। माता गांधारी के सामने भी वह अपने अभिमान को नही त्याग सका--

"माता के सम्मुख जाकर भी,
वह न अहंता छोड सके
अहबुध्दि वेष्टित जंघा को
भीम इसी से तोड सके।"20

अपने घमंड के कारण वह अपनी जांघ को अपनी माता के सामने ठके रहा जिससे वह वज्र के समान नहीं बन सकी फलस्वरुप भीम ने उसकी जांघ तोडकर आहत कर दिया। धर्मराज युधिष्ठिर को धर्म का शरीर, भीम को उनका प्राण, अर्जुन को भुजा, नकुल सहदेव को दोनों चरण बनाकर कवि द्रुपद की पुत्री द्रौपदी की जीवनीशक्ति का रुप प्राप्त करता हैं। अधर्म के प्रतीक दुर्योधने इसी जीवनीशक्ति का अपमान किया था इस अपमान का बदला युधिष्ठिर के शरीर में प्राण समान स्थित भीम ने लिया था। फिर भी इस घटना से धर्मराज व्याकुल हैं इसका उत्तर देते हुए कवि कहता हैं कि युधिष्ठिर का मन दुर्योधन के आहत होनेपर इसीलिए चिंतामग्न है कि उन्होंने दुर्योधन के प्रति प्रतिशोध का भाव क्यों अपनाया, क्यों उससे ऐसा क्रुर बदला लिया। उनका हृदय निर्भय और कठोर क्यों बन गया दुर्योधन पर उन्होंने अपने हृदय की ममता, दया, करुणा क्यों नही प्रकट की। युधिष्ठिर की इसी द्विविधाग्रस्त विचारोंसेही प्रवेशसुत्र मे वर्णित कथा समाप्त होती है।

इस काव्य कृति का दुसरा अध्याय "प्रत्यावर्तन" का अर्थ होता हैं वापस लौट आना। काव्य कृति का यह अंश युधिष्ठिर और दुर्योधन के संवाद रुप में हैं। इसमें 'प्रवेशसुत्र'

की आगे की कथा शुरु होती हैं। युधिष्ठिर यहाँ दुख और ग्लानि से भरे हुए है। स्वर्ग की ओर प्रस्थान करनेवाला दुर्योधन पराजित और घायल होकर भी सुख संतोष से भरी आत्म तृप्ति का भाव लिए हुए हैं। दुर्योधन के प्रति अपने निर्मम व्यवहार पर पश्चात्ताप प्रकट करते हुए युधिष्ठिर दुर्योधन से कहते हैं "हे भाई दुर्योधन मुझे क्षमा करो। मैं तुमसे क्षमा की भीख मांगता हूँ मेरा हृदय तीव्र आवेश से भर गया था उसने मुझे तुम्हारे प्रति इतना कठोर बना दिया। हे बधु दुर्योधन मेरे हृदय की उत्तेजना सचमुच ही बडी तीव्र थी। मैं उसे सहन नहीं कर सका इसलिए मैने तुमसे प्रतिशोध लिया। मुझे भय था कि मेरे प्राणों का यह तीव्र आवेश तुम्हारे प्राणोंका संकट बनेगा और अंत में यही हुआ। आज हाथियों के स्वामी समान शक्तिशाली कौरव पति दुर्योधन नष्ट हो गया। हे बंधु! दुर्योधन मुझे इसके लिए क्षमा करों।"2। युधिष्ठिर के इस कथन का उत्तर देते हुए दुर्योधन कहता हैं "हे युधिष्ठिर अब तुम मेरे घायल शरीर को देखकर क्यों भयभीत हो रहें हो। मुझ प्राण विहिन पुरुष के प्रति तुम्हारी शंका निर्मुल हैं। सत्य हैं इस संसार में जबतक मनुष्य है उसके हृदय की कामनाएँ, शंकाएँ और भय से भरी रहती है संसार का कठोर सत्य उसे भयभीत बताए रखता हैं।"22

दुर्योधन के इस वक्तव्य पर युधिष्ठिर कहते हैं भाई सुयोधन अभी तो तुम जीवित हो इसलिए हम अपनी पुरानी शत्रुता को भुला दें। युधिष्ठिर के इस कथन पर दुर्योधन कहता हैं कि "मुझे अब इतना समय नहीं कि अपनी शत्रुता को भुला दे और मित्रता पर विचार कर सकूँ अब तो मैं स्वर्ग की ओर प्रस्थान करनेवाला हूँ। मेरे प्राण स्वर्ग की सीमा को छू रहें है। इसपर युधिष्ठिर कहते हैं कि दुर्योधन मैंने दृढ निश्चय किया है कि अपना जीता राज्य तुम्हें लौटा दूँ। मुझे ऐसा प्रतीत होता हैं कि विजयी बनकर भी मै हार गया हूँ क्योकि मै अपने उपर नियत्रण नहीं रख सका। प्राणों कि तीव्र वशीभूत बन तुमसे प्रतिशोध लिया मैं इस अनियमित मत पर विजय प्राप्त करना चाहता हूँ। मुझे राज्य की विजय नही मनकी विजय चाहिए। क्षितिज के सुर्यदेव मेरी इस प्रतिज्ञा के साक्षी हैं।"23 युधिष्ठिर के यह कहने पर कि तुम मेरा जीता हुआ राज्य ले लों दुर्योधन अस्वीकृति के स्वर मे कहता हैं कि मुझे अपना राज्य वापिस नहीं चाहिए, जिस पृथ्वीपर मैने राज्य किया हैं कुल के शत्रु युधिष्ठिर तुम्ही उसका भोग करो, धर्मराज इस राज्य को जीत कर तुम घाटे में ही रहें। तुम्हें स्वर्ग छोडकर इस पृथ्वीपर आना पडा और मै इस पृथ्वी को छोडकर स्वर्ग की ओर प्रस्थान कर रहा हूँ। इसप्रकार तुम पृथ्वी के वासी बन रहे हो और में स्वर्ग का।

इस काव्य का तीसरा अध्याय हैं "नियतिचक्र" काव्य कृति का यह अंश नियति और चक्र इन दों शब्दों के पात्र रुप माध्यम से संवाद रुपमें हैं। यह संसार भाग्य चक्र के अनुसार चलता हुआ सदैव परिवर्तनशील हैं। रात्रि के पश्चात दिवस आता हैं और फिर दिवस के पश्चात रात। पतझड वसंत में बदल जाता हैं और फिर बसंत के पश्वात पतझड आता हैं। पतझड के रुप में दुख और वसंत के रुप में सुख के दिन उसे देखने ही पडते हैं, कवि कहता हैं कि आज पृथ्वीपर तो पतझड छाया हुआ हैं, परंतु आकाश में वसंत हैं अर्थात पृथ्वीपर महाभारत युध्द की पतझड तैसी भयंकरता छायी हुअी आकाश में वसंत जैसा स्वर्ग।"24 नियति के प्रसंग को ही आगे बढाते हुए कवि कहता हैं कि स्वर्ग के कल्प-वृक्षों पर नवीन पत्ते आए हैं परंतु पृथ्वी पर तो अभी शिशिर ऋतु ही हैं। शिशिर ऋतु में जैसे पेडों की सुखी डालियों पर ओस की बुँदे छाई रहती हैं वैसे ही मानों पृथ्वीपर ऑसुओं की बुँदे गिर रही हैं। नीले आकाश में प्रकाश चमक रहा हैं परंतु पृथ्वीपर विशाल समुद्र के समान आकाश का गहरा अंधकार छाया हुआ हैं। नियति का चक्र ऐसा ही हैं पृथ्वी के वासी आज धर्मराज युधिष्ठिर हैं, जो वास्तव में स्वर्गरुप आकाश के वासी होने चाहिए। जब कि दुर्योधन जैसा प्रचंड नृपति स्वर्ग में स्थित हैं।

"हैं भूतल पर आकाश पुरुष
स्वर्गस्थ कही भूपति दुरन्त।"25

इस संसार में जो आज समर्थ है वे ही कल असमर्थ बन जातें हैं नियति का यह क्रम अबाध रुप से चलता हैं, यहाँ कौन अपने को सफल कह सकता है और कौन असफल। सभी का जीवन क्षणभंगुर हैं। यहाँ सिर्फ रह जाती हैं मानव प्राणियों की कामना जो पूर्ण नहीं होती। महाभारत युध्द के पश्चात सारी पृथ्वी स्मशान बन गई हैं। इस युध्द में करोडों मानव प्राणियों की स्मृतियाँ और उनकी अपूर्ण कामनाऐं चारों दिशाओं में बिखरी पडी हैं। महाभारत की जयमाला जैसे युध्द में हत करोडो मानव प्राणियों की मुंडमाला हैं। कवि इससे आश्वस्त है कि जिस प्रकार अंधेरे में उजाला लिया रहता हैं, पतझड के पश्चात वसंत आता हैं उसी प्रकार महाभारत के युध्द का अंधकार नवीन सुख का प्रकाश लायेगा इसीप्रकार नियतिचक्र इस शीर्षक कथा के अंश में कवि ने संसार की परिवर्तनशीलता को प्रकट किया हैं।

इस कृति का चौथा अध्याय हैं "अमर्ष विषाद" अमर्ष से तात्पर्य है- क्रोध, असहिष्णुता, तिरस्कार से उत्पन्न मन में तीव्र क्षोभ। विषाद का तात्पर्य हैं- दुख, निराशा। अमर्ष और विषाद यह शीर्षक इस कृति के प्रमुख पात्र अश्वत्थामा के हृदय के अमर्ष और

युधिष्ठिर के हृदय के विषाद को लेकर चला।"26 महाभारत के युध्द में कौरवपति दुर्योधन की पराजय होती हैं और धर्मराज युधिष्ठिर को विजय। अश्वत्थामा के मनमें इसका बडा क्रोध और दुख हैं वह महाभारत युध्द का अंतिम सेनापति हैं उनका दावा हैं सेनापति के जीवित रहते, सेना कैसी नष्ट हो सकती हैं कृतवर्मा और कृपाचार्य जैसे प्रचंड सेनानायक भी जीवित हैं। वह अपने पिता द्रोणाचार्य की मृत्यु का बदला लेना चाहता हैं, उसीतरह वह अपने स्वामी दुर्योधन की रक्षा नहीं कर सका इस मानसिक अमर्ष ने अश्वत्थामा पागल बन गया हैं, इसलिए प्रतिशोध के रुपमें द्रौपदी के पाँचो पुत्रों की हत्या करना चाहता हैं। कृतवर्मा और कृपाचार्य ऐसा करने से रोकते हैं पर वह मानने को तैयार नहीं हैं--

"प्रतिहिंसा प्रेरित हूँ, रिपुओं से बदला लूँ।
कर दूँ मै गुरुद्रोही पाण्डव का बीज नाश।
द्रुपद तनय नारकीय कीडों को नरक मिले।
दुर्योधन महाराज करें सुखद स्वर्गवास।
लूँगा प्रतिशोध आज, मेरा आवेग दुसह।"27

धर्मराज युधिष्ठिर महाभारत युध्द में विजय प्राप्त करके भी अपने को बहुत निराश उत्साहहीन अनुभव करते हैं, उनकी दृष्टिसे अभी बहुत कार्य बाकी हैं। वे शत्रुपक्षके सेनानायक अश्वत्थामा , कृतवर्मा और कृपाचार्य से बडे उमंग के साथ मिलना चाहते है, उनके चरणो में प्रणाम करना चाहते हैं इसपर सात्यकि कहते हैं"महाराज शत्रुओ का अब कोई निशान नहीं मिलता। यह शत्रु नहीं पराजित हुआ उनकी पराजय अधर्म की पराजय आपकी विजय धर्मकी विजय है। इसपर युधिष्ठिर सात्यकि को संबोधित कर कहते है-- ऐसा सोचना उचित नहीं, महाभारत युध्द में अधर्म की नही धर्म की पराजय हुई है इस युध्द में जो कुछ भी किया गया उसमे धर्म नहीं था, विजय प्राप्त करने के लिए धर्म का नही अधर्म का मार्ग अपनाया, विजय हासिल करनेके लिए गुरु द्रोणाचार्य के मस्तक को काटकर उनके प्राणोंका अंत किया गया। इसपर सात्यकि उस प्रसंग की याद दिलाते हैं जिसमें गुरु द्रोणाचार्य ने चक्रव्युह की रचना की थी जिसको भेदते हुए अर्जुनपुत्र अभिमन्यु का प्राणांत हुआ। महाराज युधिष्ठिर का दावा हैं कि इस युध्द से मुझे शक्ति नहीं अधैर्य मिला, सुख के बदले दुख पाया धर्म को मैने खो दिया। शरीर में आत्मा के समान यह चक्रव्यूह भी महाभारत युध्दरुपी शरीर में आत्मा के समान था, इस आत्मारुपी चक्रव्यूह को तो अर्जुन जैसा ही महारथी भेद सकता हैं जिसके रथ के सारथी कृष्ण

हैं और कभी न गिरनेवाली पताका जिसके रथ पर हैं। जिसके मन में इस आत्मारूपी चक्रव्यूह को भेदने की तीव्र लालसा हैं।'28 इसतरह अमर्त्य विषाद में कविने युधिष्ठिर का मानसिक अंतर्द्वद्व बडे ही मनोवैज्ञानिक धरातल पर चित्रित किया हैं।

उत्तरजय का पाँचवा अध्याय "प्रतिशोध" हैं। इस शब्द का अर्थ भी हैं बदला लेने की भावना। महाभारत युध्द में गुरु द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा कौरव की पक्ष की ओर से अंतिम सेनापति थे। धोखे से अपने पिता गुरु द्रोणाचार्य के मारे जाने, दुर्योधन के घायल होने और युध्द में कौरव पक्षकी पराजय ने अश्वत्थामा को क्रोध से पागल बना दिया। प्रतिशोध की ज्वाला उनके मनमें धधकने लगी फलस्वरुप उन्होंने युध्द की अंतिम रात्रि में पांडवों के शिबिर में घुसकर द्रौपदी के पाँचों पुत्रों की हत्या कर दी और ब्रम्हास्त्र से उत्तरा के गर्भस्थ परिक्षित को भी मारना चाहा--

"नहीं रहें द्रुपदा के महारथी पाँच पूत।
मेरा ब्रम्हास्त्र करें पाँडवकुल को अछूत।"29

इसप्रकार अश्वत्थामा ने अपने प्रतिशोध को पूरा किया। काव्य के इसी अंश में महाभारत के इसी भीषण प्रसंग को उठाया हैं। द्रौपदी के पाँचो पुत्रों की हत्या कर अश्वत्थामा हर्षित होता हैं, पांडव शिविर में घटित इस घटनासे दुःखी होकर कृष्ण, द्रौपदी, युधिष्ठिर, अश्वत्थामा को खोजते हुए आते हैं। कृपाचार्य और कृतवर्मा अश्वत्थामा को भागने की सलाह देते हैं। लेकिन जब वह भागने की चेष्टा करता हैं तभी युधिष्ठिर के उसकी भेट हो जाती हैं। धर्मराज युधिष्ठिर अश्वत्थामा का वध नही चाहते। इसके विपरित युधिष्ठिर बडी विनय के साथ अश्वत्थामा से क्षमा मांगते हुए आपस का वैरभाव भुलने के लिए कहते हैं। अश्वत्थामा को भी अपने कृत्यपर पश्चात्ताप होता हैं वह अपने दुष्कर्मो का प्रायश्चित्त करने के लिए हृदय में दुख की ज्वाला लेकर युध्दभूमि, नगर, गाँव, राज्य को त्यागकर पाँच हजार वर्षतक इस तिमिरनगरी से दूर जाना चाहते हैं। जहाँ उनकी आत्मा को शांति प्राप्त हो इसप्रकार वह मनस्तापित अग्नि से जलते हुए वहाँ से चले जाते हैं।

अश्वत्थामा के चले जाने पर द्रौपदी युधिष्ठिर के पास आती हैं वह युधिष्ठिर को अश्वत्थामा को दंडित करने के लिए कहती हैं। अश्वत्थामा को क्षमा करना वह उचित नहीं समझती। द्रौपदी युधिष्ठिर को दण्डपाणि नाम से संबोधित करती हुयी कहती है आप राजधर्म पालन निमित्त अश्वत्थामा की मणि प्राप्त करें और अब इस संसार के प्रति अनासक्त न रहें। कृष्ण भी आकर युधिष्ठिर से यही कहते हैं"धर्मपुत्र को संकोच करना उचित नहीं हैं,

BARR... ...AR LIBRARY
SHIV... ... KOLHAPUR

अब तुम्हें भवप्रवृत्त होकर भूतल का धर्म अपनाना होगा किसी भी प्रकार के धर्म की उपलब्दि कर्म के बिना नहीं होती। अत जीवनीशक्ति से कर्म के लिए प्रेरित होकर मोहानुरक्ति को त्याग धर्मराज मणि प्राप्त करने का प्रयत्न करें।"29 उस दिव्यमणि में मंत्रप्रभा हैं और वर्तमान राजतंत्र ज्योतिहीन हैं, भवफणिंद्र अश्वत्थामा से मणि लेकर क्रोधित जनशक्ति को संतुष्ट करना ही उचित हैं। कृष्ण के रामझाने पर भी युधिष्ठिर गुरुपुत्र के शोणित से अपनी तृष्णा शांत करने में असमर्थतता प्रकट करते है, उसी समय कृष्ण स्वयं अश्वत्थामा पर शस्त्र उठाकर मणिविमुक्त और मोहमुक्त करने चले जाते हैं। जाते जाते कहते हैं कि भारत को केशव का अनुयायी बनना ही होगा। इसप्रकार युधिष्ठिर के मन की इस दुविधा को 'प्रतिशोध' शीर्षक अंश में कविने बडी कुशलता से चित्रित किया हैं।

इस काव्य का छटवाँ अध्याय हैं परिणति। जिसका अर्थ हैं किसी वस्तु का दूसरी वस्तु में बदलना। काव्य के इस अंश में प्रतिशोध की अगली कथा का वर्णन हैं। प्रतिशोध में श्रीकृष्ण और द्रौपदी अश्वत्थामा की मणि छीनकर उससे प्रतिशोध लेना चाहते हैं तो परिणति में आकर यह प्रतिशोध की भावना प्रेम और शाति में बदल जाती हैं। भगवान वेदव्यास के आश्रम की ओर भागतें हुए अश्वत्थामा ने पॉचजन्य का नाद सुना। अगले ही क्षण कृष्ण उनके पास पहुँच गये और उनका मार्ग रोका तथा कृष्ण ने उसे पीडा का महत्व समझाकर ब्रम्हास्त्र की ज्वाला समेट लेने को कहते हैं परंतु अश्वत्थामा इस कार्य में अपनी विवशता प्रकट करता हैं। वह युधिष्ठिर को अपने मस्तक की मणि प्रदान करते हुए कहता हैं कि वे भी इस क्षात्रधर्म के पालन करने के उपरांत ब्राम्हकाज करें। युधिष्ठिर अश्वत्थामा के इस आदेश को सहर्ष स्वीकार करते हैं। इसके बाद युधिष्ठिर मानव बनकर जीने का व्रत लेते हैं और विनयसहित गुरुपुत्र अश्वत्थामा को प्रणाम करते हैं।

"मानव बन जिऊ बन्धु, देवों के करुँ काज।
यदि यह संभाव्य मुझे, स्वीकृत पद धर्मराज।"3।

कृष्ण ने अश्वत्थामा को साधुवाद देते हुए कहा कि अब वे कुरुक्षेत्र छोडकर धर्मक्षेत्र में निवास करें। अपने इस लोक मांगलिक कार्य के कारण भावी व्यास बनेंगे।"32 जबतक अश्वत्थ विश्व हैं, तबतक अश्वत्थामा रहेंगे उन्होंने मणि देकर व्रण अपनाया। परपीडा का वरण किया। वे स्वयं समर्थ होकर भी वेदना शिरोधार्य की पीडा को सहकर एक नया आदर्श ससार के सामने उपस्थित किया अश्वत्थामा का यह महान बलिदान देखकर कृष्ण पुन कहने लगे कि वे

भी अश्वत्थामा की ही भाँति इस जगती के व्रण लेकर जाएँगे।

इस काव्य का सातवाँ अध्याय "स्वीकृति" शीर्षक से लिया गया हैं। स्वीकृति का अर्थ हैं स्वीकार करना। काव्य का यह कथा भाग धृतराष्ट्र, संजय, विदुर, गांधारी, कृष्ण, युधिष्ठिर आदि पात्रों को लेकर हैं। महाभारत युध्द के पश्चात कौरवों का संहार होने पर कौरवों के माता पिता धृतराष्ट्र और गांधारी का मन बडा दु:खी होता हैं। यद्यपि संजय और विदुर ने उन्हें समझने का प्रयत्न किया परंतु गांधारी पहले क्रोधावेश में कृष्ण और उनके यादव कुल को शाप दे देती हैं।

"कुरुकुल-सा यदुकुल भी होगा कुलकलह ग्रस्त।
जैसे कुरुराज आज ,होंगे बसुदेव त्रस्त।"33

विदुर श्रीकृष्ण को गांधारी द्वारा दिए गए शाप कि निंदा करते हैं। इसीसमय क्रमशः कृष्ण और युधिष्ठिर वहाँ प्रवेश करते हैं कृष्ण गांधारी के शाप को स्वीकार करते हैं और कहते हैं कि अपने भक्तों के पाप पुण्य उन्हें सदैव शिरोधार्य हैं।'38 परंतु गांधारी को अपने कृत्यपर पश्चात्ताप होता हैं। साथ ही धृतराष्ट्र के स्वागत के मंगल साज सजाने की आज्ञा दी। गांधारी ने भी युधिष्ठिर की प्रशंसा की तथा विदुर और कृष्ण ने युधिष्ठिर को राजधर्म की शिक्षा दी--

"अनुशासित शासन हो, मर्यादित राजधर्म।
रक्षित हो राष्ट्र-मर्म,द्रुष्ट प्रजा पुष्ट वर्म।"35

युधिष्ठिर ने कुरुकुल के विग्रह को नष्ट समझा तथा अपनी मति को प्रगति एवं कृष्ण के आदेश की प्रत्येक स्वीकृति को दृष्टि माना।

उत्तरजय का आठवाँ अध्याय हैं "साधन।" साधन का तात्पर्य प्रयत्न तथा कार्य जिससे किसी उद्देश्य को पूरा किया जाय। काव्य का यह अध्याय विदुर, युधिष्ठिर, कुंती, कृष्ण आदि पात्रों को लेकर हैं तथा इसमें स्वीकृति अध्याय के आगे की कथा को लिया गया हैं। महाभारत युध्द के पश्चात देश में सुशासन की व्यवस्था तथा सच्चे धर्म का पालन करते हुए भारत देश में राजतंत्र का संचालक सुचारु रुपसे होने के लिए युधिष्ठिर माता कुंती का शुभाषिश प्राप्त करते हैं--

"चलो याज्ञसेनि! चलो यज्ञदेव यदुनंदन
विधिवत् मैं करुँ पृथा माता का पद वंदन।

समर यज्ञ पूर्ण हुआ, चुर्ण हुआ अहंकार
पृथिवी की सेवा ही माता का हृदय द्वार।"36

कुंती माता युधिष्ठिर और द्रौपदी को मंगलमय जीवन का आशिर्वाद प्रदान करती हैं और वह श्रीकृष्ण के नारायण स्वरुप को प्रकट करती हैं तथा महाभारत के युध्द के उपरांत मिली विजय पर अन्तर प्रकट करती हुयी अब इस संसार से मुक्ति पाने की कामना करती हैं। कृष्ण युधिष्ठिर से शरशायी भीष्म पितामह की याद दिलाते हैं और कृष्ण के कहनेपर राजधर्म की दीक्षा लेने के लिए युधिष्ठिर भीष्म पितामह के पास जाते हैं।

इस काव्य का नवाँ अध्याय हैं "साध्य"। साध्य का अर्थ है वह वस्तु जिसे प्राप्त करने के लिए प्रयन्न किया जाय। यह 'साधन' का अगला अंश हैं। साधन शीर्षक अंश में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के साथ भीष्म पितामह के पास राजधर्म की शिक्षा लेने जाते हैं, संजय को दिव्य दृष्टि प्राप्त हैं उसी से वह इस दृश्य का वर्णन धृतराष्ट्र से करते हैं। पितामह ने धर्मपुत्र की विजय कर विधाता की लिखी हार जीत स्वीकार कर ली।

कर लो स्वीकार हार, हार-जीत विधि लेखी।'37

युधिष्ठिर उनके चरणों की ओर तथा कृष्ण सिर की ओर खडे हुए हैं फिर दोनों ने शरशायी की परिक्रमा की और मरणासन्न वृध्द पितामह ने युधिष्ठिर को राजधर्म की शिक्षा दी। संजय ने यह सारा दृश्य दिव्य दृष्टिसे देखकर धृतराष्ट्र को सुनाया जिससे उसका मन स्वस्थ हुआ और उन्होंने संजय से शांति पर्व सुनने की कामना की।

'संजय मति भ्रांति गई, स्वस्थ हुआ विफल गर्व।
विग्रह की व्यथा सही सुनना है शांति पर्व।"38

संजय ने उन्हें धर्मराज के राज्यपर प्रतिष्ठित होने के कारण धरा के स्वर्ग बनने की सूचना दी।

उत्तरजय काव्य का दसवाँ अध्याय है 'समुदय।' इसका अर्थ हें भली प्रकार से उदय। इस कथा भाग में पुरुष पात्र नहीं हैं। प्रगति और पंथ भाव शब्दों के संवाद रुप में यह शीर्षक हैं। प्रगति का अर्थ-आगे बढता तथा पंथ का अर्थ हैं-- धर्म मार्ग जिस पर चलकर प्रगति हो। धर्मराज युधिष्ठिर महाभारत युध्द के प्रश्चात भारत देश के राजा बनते हैं जिन्होने 36 वर्षतक राज्य किया। उनके राज में चारों ओर प्रगति होती हैं धरती के व्रण भर जाते हैं, और काया स्वस्थ होती हैं।

'सम्राट युधिष्ठिर बने, नया युग आया।

पृथिवी के व्रण भर गए, स्वस्थ है काया।"39

युधिष्ठिर के राज्य में सुख और समृध्दि छाती हैं धर्म का उदय होता हैं। प्रगति के पथपर चलकर सम्राट युधिष्ठिर के हाथों नया युग आता हैं। इसतरह काव्य के इस छोटे अंश में इस तथ्य का उल्लेख है कि इस प्रगति का क्या रुप हैं यह प्रगति कैसी हैं किस प्रकार युधिष्ठिर के धर्म राज्य में सुख और समृध्दि का प्रकाश होता हैं।

उत्तरजय काव्य का ग्यारहवाँ अध्याय सिध्दि हैं। किसी वस्तु का प्राप्त होना ही सिध्दि हैं। काव्य के इस सिध्दि शीर्षक कथाभाग में युधिष्ठिर का ऐसा ही सफल मनोरथ हैं। महाभारत युध्द के पश्चात राष्ट्र की सुख और समृध्दि के लिए उन्होंने जो साधना की धर्मराज्य का संचालन किया उसमें वे सफल होते हैं, वे सिध्दि को प्राप्त करते हैं। यह सिध्दि उन्हें तभी प्राप्त होती हैं जब वे आकाश पुरुष होते हुए भी पृथ्वीपर उतरते हैं। अपार्थिव होते हुए भी पार्थिव बनते हैं।

युधिष्ठिर भी अपने वैभव और संपदा को देखकर प्रसन्न थे, आनंद का साम्राज्य चारों ओर छा जाता हैं--

"सुस्थिर है राष्ट्र देश, पूर्णकाम अर्थ-धर्म,
कर्मयोग साधन से प्राप्त हुआ मुझे मर्म।"40

इतने में सहसा वज्रपात हुआ। द्रौपदी के द्वारा युधिष्ठिर को यह दारुण समाचार सुनने को मिलता हैं कि यादव कुल का नाश हो गया और भगवान श्रीकृष्ण भी व्याध के तीर द्वारा वैकुंठ लोक को प्राप्त हुए। इस समाचार से युधिष्ठिर को गहरा दुख होता हैं। वे द्रौपदी से कहते हैं कि "संसार का यह विधि विधान इतना निष्ठुर क्यों हैं"?39 संभ्रमावस्था में युधिष्ठिर ने हृदयस्थ विदुर का आव्हान कर उनसे पूछा कि तटपर आकर भरा पूरा पोत क्यों डुबा? पोतपाल पुरुषोत्तम उन्हें अकेला क्यों छोड गए। हृदस्थ विदुर ने उन्हें सावधान किया--

"भूतल पर इतने तो उतरो मत हे नरेंद्र।
देखो गिरि-शिखार-शीर्ष देशकाल परिधी केंद्र।"4।

हृदय में अवस्थित विदुर उन्हें चैतन्य प्रदान करता हैं कि यह तो संसार हैं, यहाँ ऐसा ही दुख होता हैं इसपर अधिक ध्यान देना उचित नहीं। संसार की आसक्ति से उपर उठना ही उचित हैं। इसीलिए युधिष्ठिर अंत में संसार से मुक्त होना चाहते हैं। संसार को छोडना चाहते हैं और हिमाचल की ओर प्रस्थान करना चाहते है। अब वे इस संसार में रहना उचित नहीं समझते क्योंकि अब द्वापर का युग बीत गया हैं और कलियुग आ गया हैं। पाँचों तत्व मुक्ति हेतु अंबर में मिलने को अधीर हो उठें। अंबर के आमंत्रण को स्वीकार कर आकाशपुरुष ने जीवनीशक्ति से कहा कि वह उनके

गन से पार्थिव लौह कवच खोल दे। धर्मराज ने याज्ञसेनि से विदा माँगी। अनंत का आव्हान सुन धर्मराज चल पडे। इसके साथ ही ग्यारहवे अध्याय की कथा का समापन होता हैं।

उत्तरजय काव्य का बारहवाँ और अंतिम अध्याय "प्रसिध्दि" हैं। जिसका तात्पर्य किसी चीज का प्रसिध्द होना, जिसप्रकार काव्य का प्रारंभिक अध्याय प्रवेशसूत्र में गाथा गीत छंदों के माध्यम से व्यक्त हुआ हैं, उसीप्रकार इस अध्याय में भी गाथा-गीत पात्र रुप में हैं। काव्य का यह कथा भाग बिलकुल छोटा हैं और इसमें यह चित्रित किया गया हैं धर्मराज युधिष्ठिर पृथ्वीपर धर्मशासन कर पुनः स्वर्गलोक चले गए। अंबर में आलोक हुआ और सबने सहसा विशाखा के उतार से धरती की ओर आना हुआ एक वीर देखा। वे वीर थे कलियुग के रुप में अवतरित नृप दुर्योधन जो स्वर्ग भोगने के उपरांत पुनः पृथ्वीपर आ गए। अंत में कवि कहता हैं कि कालचक्र निरंतर गतिशील हैं और आरोहण-अवरोहण का वह क्रम सदैव चलता रहता हैं। इसप्रकार श्री. नरेंद्र शर्मा ने प्रस्तुत काव्य की कथा संक्षिप्त होने पर भी विचार प्रधन बनायी हैं। कवि ने इस कथा में पात्रों के चरित्र को आधुनिक संदर्भ से चित्रित करनेका प्रयास किया हैं जिसमे कविने सफलता प्राप्त की हैं ऐसा कह सकते हैं।

प्रतीकात्मक कथा- प्रस्तुत अध्याय में चर्चित दोनों कृतियों की कथा में प्रतीकात्मकता दिखाई देती हैं। कवि अपना कवि अपना अध्यात्मिक दृष्टिकोण और आस्थाओं का प्रयोग करनेके लिए प्रतीकोंका प्रयोग करता है, जिसके द्वारा वह समाज या समूह की भावनाओंसे तारतम्य स्थापित करनेका प्रयास करता हैं। इन दो कृतियों के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि श्री. नरेंद्र शर्मा की अंतर्दृष्टि अतीत की ओर हैं। और उन्होंने अतीत का सिर्फ कोरा गान नहीं किया तो उसमेंसे महत्वपूर्ण अंश को अपनाकर उसकी आधुनिक जीवन के संदर्भ में नयी व्याख्या प्रस्तुत की हैं इस दृष्टिसे कवि का कथन हैं--" मैं जानता हूँ कि आर्ष और प्राचीन कथाओं में विद्वानों ने ऐतिहासिक तथ्यों को भी खोजने का प्रयत्न किया हैं। पर मेरी रुचि तो काव्य प्रतीकों के अनुसंधान में गई हैं। मेरी दृष्टि में हमारे ऋषियों और प्राचीन कवियों की मनीषा काव्य प्रधान थी। उन्होंने विश्व की आधिभौतिक आधिदैविक और अध्यात्मिक सत्ता का काव्य में रहस्यान्वेषण और प्रतीकात्मक निरुपण किया। सत्य के साक्षात्कार और उसकी अभिव्यक्ति की यह शैली उन्हें प्रिय थी।"42 कविने अपने इस दृष्टिकोण को प्रमाणित करने का प्रयास प्रस्तुत कृतियों में किया हैं।

"द्रौपदी" में कविने भारतीय नारी के तेजबल का गुणगान किया है। नारी

नारी की दहनशक्ति और सहनशक्ति और दहन-सहन शक्ति की ओर संकेत किया हैं। इस काव्य में द्रौपदी को प्रमुख केंद्र बनाकर महाभारत की घटित अनेक घटनाओं को अपने परिवेश में समेटते हुए प्रतीकात्मक ढंगसे काव्य के कथानक का विस्तार किया हैं। प्रथम एवं द्वितीय सर्ग में प्रतीकात्मक रुप में कौरव पांडवों का विरोध दर्शाया हैं पाँचो पांडव, धृतराष्ट्र के शत पुत्रों, होमकुमारी अयोनिजा द्रौपदी, यज्ञेश , नारायण पृथा पुत्र कर्ण एवं अन्य पात्रों की प्रतीकात्मकता का पूर्ण विवेरण दिया हैं। तृतीय और चतुर्थ सर्ग में जीवन और जगत् के मर्मस्पर्शी सत्योंका संकेतात्मक शैली में विवरण प्रस्तुत करते हुए जुए मे शकुनिद्वारा पांडवों की हार। द्रौपदी को भरी सभा में विवस्त्र करना, बारह वर्षोका वनवास, युधिष्ठिर द्वारा समस्त देश का भ्रमण, अर्जुनद्वारा पाशुपत अस्त्र की प्राप्ति, आदि घटनाओं का वर्णन किया हैं। अंतिम सर्ग में युध्दोंपरांत स्थिति का वर्णन किया गया हैं। अठारह दिनों के विनाशकारी युध्द के उपरांत पांडवों को जो विजयश्री मिली वह अश्रुसिक्त थी, पश्चात्ताप दग्ध थी, सत्य, न्याय और धर्म की रक्षा सत्व एव सत्ताप्राप्ति के लिए कितना कठोर संघर्ष अपूर्व त्याग एवं बलिदान करना पडता हैं यह महाभारत के युध्द से प्रतिकात्मक रुपसे चित्रित किया हैं।

'उत्तरजय' काव्य की कथावस्तु का रुप बहुत छोटा हैं। इसमे कवि की दृष्टि व्यक्ति और चारित्रिक विशेषताओं के चित्रण पर केंद्रित रही हैं। पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को स्पष्ट करने के लिए कथानक में कुछ घटनाओं का समावेश किया हैं। इस काव्य में कवि की दृष्टि समाज से अधिक व्यक्ति की ओर रही हैं। कवि ने इस काव्य में सामाजिक जीवन के स्थान पर व्यक्ति के चरित्र का वर्णन किया हैं।

"महाभारत युध्द के पश्चात युधिष्ठिर के मन की क्या दशा हुई" इस बात को लेकर कविने अपने काव्य की भावभूमि तैयार की हैं। यहाँ कवि एक निश्चित लक्ष्य की ओर गतिशील होता है और वह यह कि मनुष्य को इस संसार के संघर्षो से घबडाना नहीं चाहिए अपितु निष्काम कर्मसाधना का आदर्श लिए, फलाफल ईश्वर के हाथों छोडते हुए सांसारिक दुखोंको जुझकर अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए। उत्तरजय में युधिष्ठिर का चरित्र हमें यही संदेश देता हैं। इस काव्य में कवि दृष्टि बहिर्मुखी न होकर अंतर्मुखी हैं।

उपर्युक्त विवेचन के आधारपर यह स्पष्ट हो जाता हैं कि द्रौपदी और 'उत्तरजय' इन दोनों काव्यो की कथा खंडकाव्य के अनुरुप हैं। दोनों कृतियों की कथावस्तु में संकलन त्रय, प्रतीकात्मकता, रोचकता, तारतम्यता, आदि का पूर्ण रुपसे निर्वाह हुआ हैं तथा दोनों

काव्यों की कथावस्तु उद्देश्यप्रधान हैं और उसपर आदर्शवाद की छाप हैं।

--------*--------*----------*----------*--------*-----

संदर्भ सूची

संदर्भ क्रमांक	किताब का नाम
1)	पं. नरेंद्र शर्मा - द्रौपदी - पृ 9 (भूमिका से उद्धृत) सं. 1986.
2)	पं. नरेंद्र शर्मा - द्रौपदी पृ.27
3)	वही पृ. 33
4)	वही पृ.36
5)	वही पृ.38
6)	वही पृ. 39
7)	वही पृ.47.
8)	वही पृ. 49/50
9)	वही पृ.50
10)	वही पृ.51
11)	वही पृ.51
12)	वही पृ. 53
13)	वही पृ.53
14)	वही पृ.57
15)	वही पृ. 59
16)	वही पृ.62
17)	वही पृ.69
18)	वही पृ.72
19)	पं.नरेंद्र शर्मा-उत्तरजय-पृ.9 सं. 1966.
20)	वही पृ.9
21)	वही पृ.11
22)	वही पृ.11
23)	वही पृ.12
24)	वही पृ. 13
25)	वही पृ. 13
26)	कविश्री. नरेंद्र शर्मा और उनका उत्तरजय- फुलचंद जैन 'सारंग' पृ. 14 सं. 1991

27) पं. नरेंद्र शर्मा-उत्तरजय- अमर्षविषाद-पृ.15 सं. 1966.
28) वही पृ. 17
29) वही पृ. 22
30) वही पृ. 27/28
31) वही पृ.33
32) वही पृ. 34/35
33) वही पृ.37
34) वही पृ.38
35) वही पृ.39
36) वही पृ.41
37) वही पृ.44
38) वही पृ.45
39) वही पृ.47
40) वही पृ. 49
41) वही पृ.51
42) नरेंद्र शर्मा-द्रौपदी- भुमिका.पृ.15 सं. 1986.

----------*----------*----------*----------×